International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 8 Issue 4, April - 2018
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

भारतीय राजनीति एवं थिरूमल आचार्य का जीवन वृतांत एवं विदेश–निर्गमन

डॉ विक्रम सिँह,

सहप्राध्यापक, अध्यक्ष, इतिहास विभाग

वैश्य कॉलेज, भिवानी हरियाणा

किरण बाला,

शोध विध्यार्थि,

सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बडी झुनझुनू, राजस्थान

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में समय–समय पर कुछ प्रवाह आते रहे जिन्होंने आन्दोलन में अपना–2 योगदान दिया। कांग्रेस आंदोलन के साथ–साथ एक अन्य प्रवाह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रांतिकारियों का भी था जो देश के अनेक क्षेत्रों से शुरू होकर फिर विदेशों में पहुँचा। अंग्रेजों की दमनात्मक रवैये के कारण यह आन्दोलन ज्यादा देर तक नहीं चल सका। अतः विदेशों के सौहार्दपूर्ण वातावरण में इसके फलने–फूलने के ज्यादा अवसर ज्यादा थे। भारतीय क्रांतिकारियों के अथक प्रयास के कारण यह आंदोलन विकसित हुआ। भारतीय क्रांतिकारियों ने औपनिवेशिक शासकों की दमनात्मक गतिविधियों की काफी आलोचना के साथ–साथ उनके शोषणात्मक एवं साम्राज्यवादी रवैये की विश्वीय–स्तर पर भी कुछ आलोचना की।[1]

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के दो पहलुओं पर ज्यादा ध्यान दिया गया। प्रथम भारतीय क्रांतिकारियों ने अपने सभी साथियों के साथ समन्वय बनाए रखा। दूसरा सीमित साधनों के होते हुए अपने कार्यों को विदेशी क्रांतिकारियों के सहयोग के द्वारा आगे बढ़ाया। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि भारतीय अपने राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रमों को मुख्य आधार बनाकर एक स्वतंत्र सामाजिक इकाई के रूप में उनको संगठित करने के कार्य किये जाये। वे भारतीय समाज के मतभेदों और जातिय ताने–बाने से अलग थे। उनका मानना था कि जब तक आर्थिक और सामाजिक पुनरूत्थान संभव नहीं होगा तब तक राष्ट्रीय आन्दोलन में गति सम्भव नहीं होगी। निःसंदेह पूजींवादी व्यवस्था ने विश्व के साथ–साथ भारत की सामाजिक व्यवस्था ही नहीं बल्कि सभी औपनिवेशिक देशों के आर्थिक तंत्र को भी भारी क्षति पहुँचाई थी।[2]

ऐसी स्थिति के कारण भारत गरीबी का शिकार होता चला गया।[3] भारतीय क्रांतिकारियों ने समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं के माध्यम से औपनिवेशिक नीतियों के विरूद्ध काफी प्रचार–प्रसार किया जिससे कि समस्त भारतीय अंग्रेजों की दमनात्मक एवं शोषणकारी नतियों की जानकारी हो सके और उनकी कड़े शब्दों में आलोचना कर सके।[4] इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे अपने प्राणों की आहुति देने में कभी भी पीछे

नहीं रहे क्योंकि वे देश को शोषण–मुक्त करने की चाह रखते थे। उनका मानना था कि एक पीढ़ी के बलिदान से देश को औपनिवेशिक नीति से मुक्ति मिल सकेगी। इसी तरह की उनकी नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से आज भारतीय उनके दिये गये योगदान की काफी प्रशंसा करते हैं और उनके योगदान को हर वर्ष मनाते हैं।

थिरूमल आचार्य भी एक ऐसे महान क्रांतिकारी थे जिन्होंने विदेशों में भारतीय क्रांतिकारियों के साथ विदेशों में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को विश्व–पटल के साथ जोड़ा। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए अपने पिता जी को छोड़ा जो मृत्यु शैय्या पर मरन्नासन थे। 1905 से लेकर 1947 तक विदेशों में रहे और निर्वासित जैसा जीवन व्यतीत किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने घर, परिवार, मातृभूमि, सगे– संबंधी, धन–दौलत सभी को छोड़कर विदेशों में जाकर निर्वासित जीवन जिया। ऐसे केवल मुट्ठीभर भारतीय ही थे जो जीवन भर विदेशों में रहकर विदेशी सहायता, सहानुभूति प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहे।[5]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन क्रांतिकारियों का अटूट विश्वास था कि जब तक विश्व–जनमत उनके साथ खड़ा नहीं होगा तब तक भारत की विभिन्न समस्याओं का समाधान नहीं होगा। आचार्य ने श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम भिखाईजी रुस्तम कामा, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, विनायक दामोदर सावरकर, वी॰एस॰ अय्यर, मुहम्मद बरकातुल्ला खाँ, हरदयाल, राजा महेन्द्र प्रताप को सहयोग दिया और अंतिम समय तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान देते रहे ताकि शोषणकारी शक्तियों से देश–मुक्त हो सके।[6]

अब उनके प्रारंभिक जीवन के बारे में बताना उपयुक्त होगा। आचार्य का जन्म 1881 में मद्रास के ब्राह्मण परिवार में हुआ। सही तिथि के बारे कोई जानकारी नहीं मिलती है। उनके पिता अंग्रेजी सरकार के सार्वजनिक विभाग में सुपरवाइजर के पद पर मद्रास में तैनात थे। उनका परिवार पहले मैसूर रियासत में रहता था लेकिन बाद में रियासत छोड़कर मद्रास में बस गया। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि मद्रास शहर में उस समय मैसूर के कई आय्यंगर कुटुम्ब रहत थे जिनको स्थानीय भाषा में 'मांडयात्थार' कहा जाता था। जो मैसूर के मांडया जिले के रहने वाले आय्यंगर ब्राह्मण थे।[7]

मैसूर से आए आय्यंगर ब्राह्मणों की गिनती मद्रास में अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में की जाती थी। इनका तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक विषयों पर काफी प्रभाव रहा। शिक्षित होने के कारण इन परिवारों की तमिल, कन्नड़ तत्कालीन परम्पराओं, रिति–रिवाजों की काफी जानकारी थी। अतः आपसी तालमेल बनने में समय नहीं लगा। तत्कालीन दक्षिण भारत में ब्राह्मणों में आय्यंगर का काफी मान–सम्मान था। जिनका राष्ट्रवादी भावना को व्यापक रूप से विकसित करने में काफी योगदान माना जाता है। वे हर लिजाज से हर मामले में अग्रणी थे।[8]

थिरूमल आचार्य जब विद्यार्थी थे तभी से पत्रकारिता में काफी रूचि लेते थे क्योंकि उनके एक सम्बन्धी एम॰ सी॰ अलासिंगापेरूमल ने 'ब्रह्मवादी' एक मासिक पत्रिका प्रारंभ की थी। स्वामी विवेकानन्द द्वारा अर्जित आध्यात्म–ज्ञान से उनका परिवार काफी प्रभावित था। ऐसा माना जाता है कि उनके परिवार ने उन्हें शिकागो के विश्व–धर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए हरसंभव सहयोग ही नहीं दिया बल्कि उनके जाने का प्रबन्ध भी किया था।[9]

यहाँ पर यह बताना उचित होगा कि उस पत्रिका में ब्रिटिश सरकार एवं अधिकारियों की नीतियों और उनकी आक्रमकता पर अनेक लेख लिखे गए और इस पत्रिका के पढ़ने वालों की संख्या भी लगातार बढ़ने लगी। पत्रिका में प्रकाशित अनेक लेखों में ब्रिटिश अधिकारियों की भारत विरोधी–नीतियों का पर्दा फास होने लगा। उनके विरूद्ध कार्यवाही करने का अधिकारियों ने अपना मन बनाया। ब्रिटिश विरोधी नीतियों को अधिकारी गहनता से देखने लगे क्योंकि उनके साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग होने के कारण उन पर लगाम लगाना आवश्यक समझा गया।[10] उनको चेतावनी दी गई कि वे अपनी पत्रिका की लय बदले वरना उनके विरूद्ध कार्यवाही संभव होगी। अपनी गिरफ्तारी से बचने के लिए आचार्य और उनके चाचा एस0 एन0 थिरूमल आचार्य ने ब्रिटिश भारत का क्षेत्र छोड़ दिया और फ्रांसीसी क्षेत्र के पांडिचेरी स्थान पर चले गये। वे फिर से इस पत्रिका का प्रकाशन करने लगे।[11] यह क्षेत्र काफी उपयुक्त था क्योंकि ब्रिटिश क्षेत्राधिकार से बाहर होने के कारण यहाँ से कार्य ठीक ढ़ंग से किया जा सकता था। इस पत्रिका के पाठकों की संख्या दिनों–दिन बढ़ने लगी। पत्रकारिता से आचार्य के चाचा काफी स्मृद्धशाली होने के कारण उन्होंने विदेश भ्रमण का कार्यक्रम बनाया।[12] आचार्य की भी इच्छा जागृत हुई और विदेशों में पत्रकारिता और उसके भविष्य की जानकारी लेने में काफी उत्सुकता प्रदर्शित की।

उनके चाचा ने उनके साथ ठीक व्यवहार नहीं किया, वे अपने साथ उन्हें क्यों नहीं ले गए। इस तरह विचार करते–2 उनके मन में भी यूरोपियन भ्रमण की इच्छा जागृत हुई क्योंकि वे अपने साथ चचेरे भाई एस0 श्रीनिवासचारी और सुब्रहमण्यम भारती को भी ले गए परन्तु आचार्य को छोड़ गए।[13] निःसंदेह यह ठेस का विषय तो था ही। उनका दिल भी बेचैन रहने लगा और न ही काम में दिलचस्पी रही। ऐसी स्थिति में उनका प्रकाशन के कार्यों से मन ऊबने लगा। पांडिचेरी में हो रही इस तरह की पत्रकारिता की गतिविधियों का मद्रास–प्रांत के अधिकारियों को तब पता चला तो उन्होंने इसकी जानकारी भारत सरकार को दी। यह क्षेत्र क्रांतिकारियों का केन्द्र–बिंदु बन गया था क्योंकि मद्रास प्रांत के बाहर होने के कारण यहाँ गतिविधियाँ तेजी पकड़ने लगी थी ।[14]

भारतीय क्रान्तिकारी अपनी गिरफ्तारी से बचने के लिए उन्हें सुरक्षित स्थान की आवश्यकता थी ताकि वे अपनी गतिविधियाँ संचालित करने के इरादे में कामयाब हो सके। शुरु–2 में काफी शांति होने के कारण यह संभव था। फ्रांसीसी क्षेत्र होने के कारण ही यह क्रांतिकारियों का केंद्र बन गया था। ब्रिटिश अधिकारियों को यह पसन्द नहीं था इसीलिए फ्रांसीसी सरकार से इस विषय पर शिकायत दर्ज कराई गई। 'कर्मयोगी' के संचालक अरविन्दो घोष ने भी पांडिचेरी में जाकर अपनी पत्रिका को पुनः प्रकाशित

करना प्रारंभ किया था। उनकी पत्रिका में भी ऐसे काफी लेख प्रकाशित होते थे जो सरकार को पसन्द नहीं थे। अपनी गिरफ्तारी से बचने के लिए पांडिचेरी में आकर अपनी गतिविधियों का केंद्र स्थापित किया था। भारतीय क्रांतिकारियों को जो साहित्य विदेशों से प्राप्त होता था उसे पांडिचेरी के द्वारा ही प्राप्त किया जाता था। देश–विदेश से अनेक क्रांतिकारी आते रहते थे और उनको प्रेरित भी करते रहते थे।[15]

यह एक सर्वमान्य धारणा बन गई थी कि जब तक सैनिक बगावत एवं हिंसा का साम्राज्य स्थापित नहीं होगा तब तक भारत से विदेशी सत्ता समाप्त नहीं हो सकेगी। भारतीय क्रांतिकारी भेश बदलकर एक जगह से दूसरी जगह जाते थे ताकि सरकारी तन्त्र उनको गिरफ्तार न कर सके। क्रांतिकारी संगठन को क्रांतिकारी साहित्य के साथ–2 बाहर से भी धन प्राप्त होता रहता था ताकि धन–अभाव के कारण सरकार–विरोधी गतिविधियाँ बराबर चलती रहें क्योंकि धन के बिना ऐसा संभव नहीं था।[16]

संचार माध्यमों की कमी के कारण कई बार क्रांतिकारियों को समाचार देर से मिलते थे। समाचार–पत्र, पत्रिकाओं आदि के माध्यम से ही वे अपनी गतिविधियों को प्रसारित करते थे। हालांकि संगठन की गतिविधियों पर तो सरकार ने कड़े नियम बनाकर उनकी गतिविधियों को सीमित कर दिया था लेकिन पत्र, पत्रिकाओं के द्वारा ही क्रांतिकारी गतिविधियों को आगे बढ़ाया जा सकता था। सरकार चौकन्नी होकर उन पर बराबर निगाहें बनाये रखती थी।[17]

प्रारंभ में तो पांडिचेरी भारतीय क्रांतिकारियों के लिए तो यह ऐसी गुप्त जगह बन चुकी थी जहाँ से क्रांतिकारी साहित्य और इसके वितरण का कार्य दिन–दोगुनी रात चौगुनी हो गया था। ब्रिटिश सरकार को ऐसी गतिविधियाँ ठीक नहीं लगी तो फ्रांसीसी सरकार पर अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए पांडिचेरी में हो रही गतिविधियों पर अंकुश लगाना आवश्यक समझा क्योंकि यहाँ से षड्यंत्रकारी साहित्य भी प्रकाशित हो रहा था। फ्रांसीसी अधिकारियों को हालाँकि यह उपयुक्त कदम नहीं लगा लेकिन अपनी सरकार की आज्ञा के कारण दबाव मानना पड़ा।[18] दबाव के कारण पांडिचेरी में फ्रांसीसी अधिकारियों ने विवश होकर ब्रिटिश पुलिस अधिकारियों को कुछ स्थानों पर चौकियाँ स्थापित करने का अधिकार दे दिया ताकि भारतीय क्रांतिकारियों पर वे चौकसी रख सकें। ब्रिटिश अधिकारी सभी भारतीयों पर शक करने लगे। जिन सामान्य भारतीयों का इन गतिविधियों से कोई सरोकार नहीं था उनकी स्थिति भी ठीक नहीं रही क्योंकि उनको भी पड़ताड़ित किया जाने लगा।[19]

ब्रिटिश अधिकारी पांडिचेरी में आनेवाले सभी लोगों पर निगाह रखी जाने लगी। अनेक आगुन्तकों को बिना वजह निशाना बनाया जाने लगा। गहन पूछताछ के कारण निष्पक्ष लोग भी अंग्रेज अधिकारियों के इस तरह के व्यवहार से घृणा करने लगे। यूरोप की राजनीति के कारण फ्रांसीसी अधिकारियों का व्यवहार शुरु–2 में उपयुक्त था परन्तु गृह सरकार के दबाव के कारण उनके व्यवहार में काफी परिवर्तन आ गया था। क्षैत्रिय अर्द्ध–फ्रांसीसी और एंग्लो–इंडियन को भी घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा हालाँकि वे शांति से जीवन जीने के पक्षघर थे। पांडिचेरी में इस तरह की गतिविधियों ने सामान्य तौर पर सामाजिक ताने–बाने को काफी नुकसान पहुंचाया जिसको सामान्य भारतीय भी ठीक नहीं समझते थे। अनेक भारतीय

पाश्चात्य संस्कृति के इस अमानवीय व्यवहार के शिकार हो चुके थे हालाँकि राष्ट्रवादी गतिविधियों से उनका कुछ भी लेना देना नहीं था लेकिन तत्कालीन समाज में भयावह की स्थिति बनने लगी थी।[20]

पांडिचेरी में ब्रिटिश अधिकारियों के इस तरह के दबाव के कारण स्थिति बदलने लगी और क्रांतिकारी गतिविधियों पर कुछ लगाम लगने लगी। फ्रांसीसी अधिकारी एवं व्यवसायिक वर्ग तो उनकी सहायता करने के इच्छुक तो थे लेकिन दोनों राष्ट्रों की सरकारों के निर्णय को मानने को भी बाध्य थे। कुछ फ्रांसीसी वकीलों ने तो ब्रिटिश की इस तरह की गतिविधियों को स्थानीय न्यायालयों में अनेक अधिकारियों के विरूद्ध मुकद्दमें भी दायर किये थे। इस तरह की गतिविधियों को पसंद नहीं किया गया। पाश्चात्य–जगत की तरह यहाँ भी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्रों में व्यक्तिवाद को प्रमुखता दी जाने लगी थी।[21]

मानव हित के लिए ही स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृ–भावना जैसे नारों की गूंज यहाँ भी दिखाई देने लगी थी। जिस तरह पाश्चात्य राष्ट्रों में राजतंत्र, सामन्तवादी, पुरोहित वर्ग की प्रधानता के विरूद्ध बगावत हुई थी यहाँ पर भी ऐसी ही भावना घर करने लगी थी क्योंकि ऐसे तत्वों को पाश्चात्य देशों में समाप्त कर दिया गया था। पाश्चात्य प्रसिद्ध समाजवादी एच.एम. हैंडमैन ने भी इसी तरह के विचार प्रकट करते हुए भारतीयों के बारे में लिखा कि 'संसार का पाँचवा भाग आज भी निरंकुश और आतंकी सरकार के अन्तर्गत असहय' होता प्रतीत हो रहा था।[22]

यहाँ पर यह बताना आवश्यक होगा कि जब तक आचार्य पांडिचेरी में रहा तब तक वह अपने साथियों के साथ साम्राज्यवादी और शोषणकारी शक्तियों के विरूद्ध अपना अभियान जारी रखा। ब्रिटिश अधिकारियों की लगतार दमनकारी नीति के कारण पांडिचेरी में भी राजनीतिक वातावरण लगातार बदलने लगा। यहाँ पर गतिविधियाँ जारी रखना मुश्किल हो रहा था। उन्हें अब ऐसे क्षेत्र की जरूरत थी जहाँ पर ऐसा वातावरण न हो और वे क्रांतिकारी गतिविधियाँ लगातार चलाते रह सके। उन्होंने इस पर विचार किया कि यूरोप ही ऐसा क्षेत्र था जहाँ पर वे अपनी गतिविधियों को जारी रख सकते थे। पांडिचेरी में इस तरह के वातावरण में ब्रिटिश अधिकारियों के अत्याचार से बच पाना अब काफी कठिन सा लग रहा था। उनके मन ने अन्ततः मान लिया था कि अब वे अपने देश में रहकर क्रांतिकारी गतिविधियों को आगे नहीं जारी रख सकेंगे।[23]

यहाँ पर यह बताना उपयुक्त होगा कि गुप्त रूप से कार्य करने के कारण उनके सिर के बाल काफी बढ़ गए थे। क्योंकि बाहर आने पर उन्हें पकड़े जाने का भय था। ब्रिटिश अधिकारियों के लिए उनकी पहचान आसान हो गई थी। अपने बढ़े हुए बालों को उन्होंने गुप्त रूप से साफ करवाया ताकि वह साधारण व्यक्ति की तरह लगे और उनको पहचान न सके। हालाँकि उस समय युवकों, ब्राह्मणों में बाल बढ़ाने की परम्परा भी थी। मंडयार अंध–विश्वासी ब्राह्मणों में तो बाल कटवाने को ठीक नहीं समझते थे बल्कि यहाँ तक कि अपराध माना जाता था। उसके न चाहते हुए भी ऐसा करवाना काफी कष्टदायक तो था ही लेकिन उन्होंने इसे एक बदलाव के रूप में अपने मन को समझाया।[24]

पांडिचेरी में जब आक्रामक एवं असहनीय गतिविधियाँ चल रही थी और वे पाश्चात्य जगत की ओर रूख करनेवाले थे तभी समाचार मिला कि उनके पिता की हालत ठीक नहीं थी। उन्हें घर पर बुलाया गया। एक तरफ गिरफ्तारी की चिंता तो दूसरी तरफ विदेश प्रस्थान की। वह ब्रिटिश अधिकारियों से बचकर विदेश जाने के लिए तैयार था लेकिन पिता की नाजुक स्थिति ने उसे अनिर्णय की स्थिति में ला दिया। अंततः उसने निश्चय किया कि पिता को ऐसी स्थिति में छोड़ कर जाना ठीक नहीं होगा। अन्ततः कठोर दिल से निश्चय किया कि अंतिम दर्शन करने के बाद ही उसे विदेश के लिए रवाना होना चाहिए। ऐसी भयावह की स्थिति में उसने जो निर्णय लिया शायद ठीक ही था। शियाली में वह अपने बीमार पिता की गंभीर स्थित को देखते हुए उसने कुछ समय तक ठहरने का निश्चय किया, लेकिन उसके अपने पिता से कहीं बड़ा देश का सम्मान समझा। देशभक्ति से पितृ भक्ति को बड़ा न मानते हुए उन्होंने बाहर जाने को देश सेवा के लिए काफी महत्वपूर्ण माना।[25]

एक तरफ से सामाजिक पारिवारिक बंधन बार–2 विवश कर रहे थे कि कुछ हद तक रूका जाए। उनके पिता की अंतिम इच्छा थी कि उसका पुत्र अंतिम समय तक उसके साथ रहे। अपने पुत्र से बार–2 आग्रह भी किया कि वे छोड़कर न जाए क्योंकि उनके पिता को अपनी मृत्यु निकट दिख रही थी। पुत्र ने भी समझा कि अंतिम दर्शन तो हो चुके हैं अतः एकदम प्रस्थान करने का निश्चय किया। यह पिता–पुत्र की यह संभवतः अंतिम मुलाकात थी और उन्हें इसका भी एहसास था। आचार्य ने अपने पिता के पैर छूकर अपने भविष्य के सपनों को साकार करने के लिए जैसे ही जाने के लिए तैयार हुआ उसके चेहरे से आँसू बहने लगे और वे कुछ भी नहीं कह सके लेकिन टपकते हुए आँसुओं ने स्थिति को स्पष्ट कर दिया। दोनों अपार दुख में थे कुछ नहीं कह सके। ऐसी स्थिति में पिता–पुत्र का एक दूसरे से अलग होना सामाजिक पारिवारिक तौर से भयावह की स्थिति थी। होनी को कोन टाल सकता था। वास्तव में ये पल विचलित करने वाले थे।[26]

आचार्य के प्रस्थान के बाद भी स्थिति वैसी ही बनी रही। क्रांतिकारी साहित्य और हथियार विदेशों से गुप्त रूप से भारत में आते रहे। इसका महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि जून 1911 को तिन्नेवैली जिले के जिलाधीश मिस्टर आशे को मनिचायी रेलवे स्टेशन पर जब रेल रूकी तो डिब्बे के अंदर उनकी पत्नी के सामने ही उसे गोली से मार दिया गया। उसकी हत्या क्रांतिकारी वांची अय्यर जो ट्रवनकोर रियासत के वन विभाग में क्लर्क था ने की थी। अंग्रेजों के हाथों से मरने की अपेक्षा आत्म–हत्या करना ठीक लगा। बाद में उसने भी आत्महत्या कर ली।[27] शंकरण कृष्णा अय्यर और वाची दोनों उस समय साथ–साथ थे और आपस में रिस्तेदार भी थे।[28]

कृष्ण अय्यर को पकड़ लिया गया और उस पर मुकद्दमा चलाया। चार वर्ष का कठिन कारावास मिला। क्योंकि वह हत्या में शामिल नहीं था। वांची अय्यर की तलाशी में एक पत्र मिला जिसमें लिखा था ''इंग्लैंड के म्लेच्छों ने हमारे देश पर कब्जा कर लिया है और सनातन धर्म को अपने पैरों से रौंद दिया।[29] सभी भारतीय अंग्रेजों को बाहर निकालने का प्रयास कर रहे हैं और वे स्वराज्य और सनातन धर्म की पुनर्स्थापना

करना चाहते हैं। हमारे राम, शिवाजी, कृष्ण, गुरु गोविन्द और अर्जुन ने सभी धर्मों को संरक्षण देते हुए राज्य किया लेकिन अब वे जार्ज पंचम, जो एक म्लेच्छ है, का राज्य स्थापित करना चाहते हैं। तीन हजार मद्रासियों ने जार्ज पंचम को खत्म करने की शपथ ली है। जैसे ही वह मारे देश में आयेगा तो वही किया जाएगा जिसकी जरूरत होगी। अपनी इच्छा दूसरों को बताने के लिए ही मैंने ऐसा किया है। मैं सभी क्रांतिकारियों में एक छोटा व्यक्ति हूँ जिसने यह कार्य इस दिन किया है। हिन्दुस्तान में सभी व्यक्ति इस प्रकार के कार्य को अपना कर्त्तव्य समझें।[30] इस पत्र ने अंग्रेज अधिकारियों की आँखें खोल दी एवं भयभीत भी हुए।

वी. वी. एस. अय्यर ने विदेशों में रिवाल्वर चलाने, बम बनाने की ट्रेनिंग ली थी वह चाहता था कि आगे भारतीयों को इसका प्रशिक्षण दिया जाए। उन्होंने सभी क्रांतिकारियों का उत्साह बढ़ाया जो पांडिचेरी में रह रहे थे। इंडिया हाउस से भारत के लिए रवाना हाते समय विनायक दामोदर सावरकर को स्पष्ट तौर पर बता दिया था कि वे किसी भी तरह की कसर नहीं छोड़ेंगे। दक्षिण भारत की क्रांतिकारी गतिविधियों पर अधिकारियों की पूरी नज़र थी और विस्तार से सभी पहलुओं एवं तथ्यों की गहनता के साथ जाँच–पड़ताल कर रहे थे।[31]

भारतीय क्रांतिकारियों का पांडिचेरी ग्रुप साधुओं के वेश में 'स्वदेशी' और 'स्वराज्य' जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों के बारे में लोगों को जागृत करते थे। वी0 वी0 एस0 अय्यर जैसे क्रांतिकारी इंग्लैंड से आकर जब इन क्रांतिकारियों से मिला तो सभी काफी उत्साहित थे। बिपिनचन्द्र पाल ने भी पहले आकर युवकों में देशभक्ति की भावना जागृत की। उन्होंने जानकारी दी कि रूस में किस तरह गुप्त संगठन बने। इसके साथ–साथ पाश्चात्य देशों में हो रहे परिवर्तन की जानकारी भी बराबर मिल रही थी। युवकों 'स्वराज्य' और 'स्वदेशी' विषयों पर गुप्त रूप से अपने विचारों का आदान प्रदान किया करते थे। उन्हें विश्वास था कि यदि वे उन पर पूरी तरह से चलें तो तीन महीने के अंदर उन्हें देश की स्वतंत्रता मिल सकती थी।[32]

देश–भक्ति के विचार उनके दिलों में हिलोरे ले रहे थे। क्रांतिकारी गतिविधियों को सरकार ठीक नहीं समझ रही थी। इसलिए अनेक क्रांतिकारियों को पकड़ कर जेलों में डाल दिया गया और अनेक जगहों पर ब्रिटिश–विरोधी दंगों की शुरुआत होने लगी। अनेक स्थानों पर सरकारी भवनों को नुकसान पहुँचाया गया और सरकारी आदेशों की सरेआम भर्त्सना की जाने लगी। इसी के साथ–साथ 'स्वदेशी' और 'बायकॉट' आन्दोलनों की शुरुआत हुई। वी0 ओ0 चिदम्बरन पिल्लै और सुब्रहमण्यम सिवा दक्षिण भारत में स्वदेशी आन्दोलन के मुख्य प्रचारक थे।[33] इनको गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन आंदोलन चलता रहा। सरकारी रवैये को देखते हुए स्वदेशी विचारों पर लिखे गए साहित्य की तरफ रूझान कम होने लगा। सरकारी तंत्र से बचने के लिए गुप्त मीटिंग करने लगे, क्रांतिकारी साहित्य को गुप्त रूप से बांटने लगे क्योंकि क्रांतिकारी गतिविधियों को सरकार ने षड़यन्त्रकारी घोषित कर दिया था।[34]

गुप्त रूप से भारत माथा एसोसिएशन की स्थापना की गई। अनेक पत्रों जैसे 'विजया', 'सूर्योदय', धर्मा' आदि को पांडिचेरी से गुप्त रूप से लाया जाता था। सभी क्रांतिकारी बम बनाने, स्वदेशी वस्तुओं के

उत्पादन व वितरण, विदेशी माल के बायकॉट आदि पर गम्भीरता से विचार करने लगे। समस्त देश में इन विषयों पर आम चर्चा भी होने लगी।[35]

भारत माथा एसोसिएशन की जब स्थापना की गई थी तो सभी युवकों को सदस्य बनाने के समय हाथ पर पुस्तक रख कर शपथ लेनी पड़ती थी, जो इस प्रकार थी – ''मैं सरस्वती माँ को हाथ में रखकर शपथ लेता हूँ कि मुझे इस संगठन का सदस्य बनना चाहिए। जो भी इस संगठन के सदस्य बनेंगे, उनके साथ भाई जैसा व्यवहार करूँगा, उनके साथ मिलकर उनकी सहायता करुँगा। इस संगठन की गतिविधियों को गुप्त रखूँगा। अगर मैं इस शपथ को तोड़ता हूँ और इसकी गुप्त गतिविधियों की किसी को जानकारी देता हूँ तो मैं पाप का भागी हूँगा।
और ऋषियों तथा काली गाय के मारने जैसे पाप को भोगूँगा।''[36] जब भी क्रांतिकारी आपस में मिलते थे तो आपसी संवाद से पहले वे 'वंदे मातरम' से अभिवादन करते थे। सभी में आपसी पत्र–व्यवहार चलता रहा और पत्र के अंत में 'भारत साहायाम' (भारत माँ की सहायता करे) जरूर लिखते थे।[37] इससे उनके इरादों और मनोबल का आभास होता है।

स्वदेशी आंदोलन को ज्यादा से ज्यादा प्रचारित–प्रसारित करने के लिए वी0 ओ0 चिदम्बरम पिल्लै और सुब्रहमण्यम शिवा का मानना था कि जब तक अंग्रेज व्यापारियों के माल का बहिष्कार नहीं किया जाएगा तो तब तक स्वराज्य की स्थापना संभव नहीं होगी। पिल्लै ने स्वदेशी नेविगेशन कम्पनी का गठन भी कर डाला, लेकिन वह इस अभियान में ज्यादा सफल नहीं हो सका। कुछ भारतीयों का मानना था कि आशे नामक अंग्रेज अधिकारी ने उसके उद्यम को काफी क्षति पहुँचाई थी। ब्रिटिश अधिकारियों ने दोनों क्रांतिकारियों पिल्लै और शिवा के विरूद्ध धोखाधड़ी का मुकद्दमा चलाकर आदेश दिया और गिरफ्तार कर दोनों को जेल में डाल दिया था।[38]

भारतीय क्रांतिकारी की अंग्रेज अधिकारियों आशे जैसे के विरूद्ध विरोधी भावना पनपी। युवक सरकारी नीतियों के विरूद्ध रोष प्रकट कर रहे थे और जिसके लिए देश की राजनीतिक व्यवस्था को ही जिम्मेदार मानते थे। उनका विचार था कि जब तक विदेशी बाहर नहीं निकाले जायेंगे तब तक देश में संपन्नता नहीं आएगी और सभी को रोजगार नहीं मिल सकेंगे। ये दोनों ही क्रांतिकारी गुप्त संगठनों के द्वारा आम सम्पर्क स्थापित करने के उनके इरादे काफी नेक थे।[39]

दक्षिण भारत के युवकों में अन्य भारतीय क्रांतिकारियों की तरह यह धारणा बन चुकी थी कि 'स्वराज्य' की बात करना या इसे प्राप्त करना 'षडयन्त्र' के दायरे में नहीं था। यह तो उनका जन्म सिद्ध अधिकार था जैसा कि तिलक ने भी कहा था। हिन्दू धर्म की सुरक्षा भी तभी संभव थी जब तक स्वराज्य प्राप्त नहीं किया होगा। उन्होंने अपने एक लेख में इसका स्पष्टीकरण किया था : ''बिना धर्म के 'स्वराज्य' की बात करना मूर्खता है और बिना 'स्वराज्य' के धर्म की बात करना शक्तिविहीन है। भौतिक शक्ति ही 'स्वराज्य' है जिसे प्राप्त करना हमारा ध्येय है। 'स्वधर्म' के द्वारा ही संसार में हमारी सुरक्षा संभव है। भगवान का आदेश ही स्वराज्य प्राप्ति है ओर इसके लिए 'धर्म' की अवधारणा ही इसकी कुंजी है। जो

'स्वराज्य' प्राप्ति की इच्छा नहीं रखता वह दासता में जकड़ा रहेगा। वह या तो निरंकारी होगा या 'धर्म' से घृणा करने वाला होगा।''[40]

इस तरह की भावना पनपने लगी थी कि जो धर्म का दुश्मन हो उसे मौत के घाट उतार दिया जाए। स्वतंत्रता के लिए बलिदान भी दिया जाए तो यह कोई नई बात नहीं होगी बल्कि इसी के द्वारा स्वशासन प्राप्त करना संभव होगा। बंगाल विभाजन के दौर से ही दक्षिण भारत में क्रांतिकारी आंदोलन को बढ़ावा देने का समय उचित था। ज्यादा से ज्यादा युवकों को क्रान्तिकारी संगठन का सदस्य बनाने का अभियान शुरु किया गया। नीलकंठ ब्रह्मचारी, चिदम्बरम पिल्ले, शंकरकृष्ण अय्यर, सुब्रहमण्यम अय्यर, सुब्रहमण्यम शिवा आदि ने 10 अप्रैल 1910 को एक गुप्त सभा का आयोजन किया और निर्णय लिया कि जिस प्रकार 1857 में अंग्रेज–विरोधी एक सशक्त क्रांति हुई थी उसी तरह एक ऐसी संगठित क्रांति की आवश्यकता थी। इस सभा में एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया कि प्रत्येक गाँवों और कस्बों से कुछ ऐसे युवाओं को चुना जाए जिससे समस्त देश में एक क्रमबद्धता के द्वारा राष्ट्रीय क्रांति संभव हो सके और इसके द्वारा अंग्रेजों को डरा–धमका कर या तौत के घाट उतार कर स्वतंत्रता प्राप्त की जा सके।[41]

उस सभा में जो नये सदस्य उपस्थित थे उनको काली देवी की मूर्ति के सामने सामूहिक रूप से शपथ दिलाई गई और फूलों के साथ माता की आरती की गई। उपस्थित युवकों को चेतावनी भी दी गई कि यदि किसी भी सदस्य ने उनके कार्यक्रमों का पर्दाफास किया तो नरेन्द्र नाथ गोंसाई की तरह उसका भी वध कर दिया जायेगा। गोंसाई अंग्रेजों का मुखबिर बन गया था और गुप्त गतिविधियों को सरकारी अधिकारियों को बता दिया करता था।[42]

जैसे–जैसे भारत के अन्य क्षेत्रों में गुप्त संगठन बने तो दक्षिण भारत में भी भारत माथा एसोसिएशन की विभिन्न शाखाएँ स्थापित करने का क्रांतिकारियों ने गुप्त रूप से अभियान चलाया जिसका प्रमुख उद्देश्य यह था कि बड़ी संख्या में इसके सदस्य बनाए जाएं। अन्य प्रान्तों की तरह दक्षिण भारत में भी क्रान्तिकारी गतिविधियों को व्यापक स्तर पर स्थापित करके क्रान्तिकारी साहित्य के प्रकाशन, सभाओं द्वारा एकता स्थापित क्रांतिकारी आदर्श मानकर उनका आत्मसात करने का आह्वान किया गया।[43]

अनेक भारतीय नेताओं जैसे – अरविन्दो घोष, सुब्रहमण्यम भारती, बिपिन चन्द्र पाल, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को भारत के सच्चे सपूतों की अग्रणी पंक्ति में स्थान दिया गया और उदारवादी विचारधारा को निरर्थक करार दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्र राष्ट्रीयवाद के सिद्धांत को अपनाने को उचित ठहराया गया। उनका यह दृढ़ विचार था कि अगर सभी व्यक्ति एकजुट होकर राष्ट्रीय सिद्धांतों को अपनाये ंतो 'स्वराज्य' की प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र होगी। यह वास्तविकता थी।[44]

दक्षिण भारत के क्रांतिकारी आंदोलन में वांची अय्यर एक ऐसा क्रांतिकारी था जिसने अनेक कस्बों में सभाएँ की और क्रांतिकारी साहित्य के वितरण को महत्वपूर्ण समझा ताकि क्रांतिकारी गतिविधियों को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाया जा सके। एक क्रांतिकारियों की सभा पूनालूर में की जिसमें वांची अय्यर ने स्पष्ट शब्दों में अपने भाषण में कहा कि उनके संगठन भारत माथा समाज के मूलतः तीन प्रमुख लक्ष्य थे– 1.

अंग्रेजों को भयावह रूप से डारा धमका कर और भयभीत करके देश से बाहर निकालना, 2. गुप्त रूप से शपथ के द्वारा कार्य करके अपने ध्येय को प्राप्त करना; 3. सभी वर्गों के लोगों के साथ बैठकर सामूहिक भोजन करना था।[45]

दक्षिण भारत में जाति–व्यवस्था का काफी बोलबाला था। वहाँ पर ब्राह्मण सम्प्रदाय सबसे ज्यादा पढ़ा–लिखा था और उसे एक बड़ा वफादार वर्ग माना जाता था। जब भी क्रांतिकारी गुप्त रूप से क्रांतिकारी साहित्य बांटने के लिए जाते थे तो कई बार उनको विरोध का सामना भी करना पड़ा। कुछ ताश खेल रहे युवकों को एक इश्तहार दिया तो उन्होंने कहा कि इस कागज को फाड़कर फैंक दो। उच्च वर्गीय युवक अपने चल रहे जीवन से संतुष्ट थे। उनको भारत माता की ग्लानी से कोई सरोकार नहीं था। उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों के अंतर्गत समझाने के कई प्रयास किए लेकिन उन पर ध्यान नहीं दिया गया। जब वे युवक एक 'सशस्त्र क्रान्ति' की बात सुनते थे तो उनको एक मजाक सा लगता था, क्योंकि वे इस तरह की विचारधारा के समर्थक नहीं बल्कि विरोधी थे।[46]

दक्षिण भारत में क्रान्तिकारी संगठनों ने व्यापक स्तर पर यवुकों को नहीं जोड़ा और न ही गुप्त सभाओं का आयोजन लंबे दौर तक चल पाया क्योंकि ज्यादातर नवयुवकों में डर की भावना घर कर चुकी थी। दक्षिण भारत के क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता का कारण भी यही था। वे इस प्रकार की भावना से काफी दुःखी थे। वांची अय्यर, नीलकंठ अय्यर जैसे महान क्रांतिकारी काफी दुखी थे और इतने परेशान हो गये कि उन्होंने यह मानना शुरू कर दिया था कि ऐसी स्थिति में अब यह संसार रहने लायक नहीं रहा।[47]

नीलकंठ अय्यर जैसे देश भक्त युवा असहाय सा महसूस कर रहे थे जैसा कि उन्होंने अपने एक भाषण मं कहा कि ''मैंने अथक प्रयत्न किये, असफल रहा, फिर प्रयत्न किये लेकिन हर बार असफलता ही मिली। मैं ऐसे प्रयत्न लगातार पाँच वर्ष से कर रहा हूँ, मैंने अपनी नौकरी छोड़ दी, घर छोड़ दिया... अब कोई आशा नहीं दिखाई दे रही है। अब क्या किया जाए।''[48] अय्यर के ये शब्द बड़े ही हतोसाहित करने वाले मालूम पड़ते हैं। उनको अहसास था कि उनको हरसंभव सहायता प्राप्त होगी लेकिन नहीं मिल पाई। अन्य प्रांतों के क्रांतिकारी भी इसी तरह की निराशा के शिकार हुए और आन्दोलन को वो व्यापकता नहीं मिली जिसकी उन्हें उम्मीद थी।[49]

विनायक दामोदर सावरकर की ब्रिटेन में मार्च 1910 में गिरफ्तारी के बाद क्रांतिकारी गतिविधियों को कुछ धक्का तो अवश्य लगा लेकिन उनको आगे बढ़ाने की अब जिम्मेदारी वी0 वी0 एस0 अय्यर के कंधों पर आन पड़ी। यह बताना आवश्यक लगा होगा कि इन दोनों ही ने क्रांतिकारी आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान ही नहीं किया बल्कि पांडिचेरी में पुनः गतिविधियों का केन्द्र स्थापित किया। उन्होंने अस्त्र–शस्त्र का उत्तम प्रशिक्षण लिया था। वह अच्छा निशानेबाज था और रिवाल्वर चलाने, बम बनाने आदि का विदेशों से प्रशिक्षण प्राप्त कर भारत में आया था। वांची अय्यर ने भी रिवाल्वर चलाने का उसी से प्रशिक्षण लिया था। दक्षिण भारत की क्रांतिकारी गतिविधियों से वांची बहुत ही दुखी था और एक मिटिंग में वी0 वी0 एस0

अय्यर को स्पष्ट बताया कि 'अंग्रेजी शासन देश को बर्बाद कर रहा है, इससे मुक्ति पाने का बस एक ही रास्ता बचा है वह है गोरे लोगों की सामूहिक हत्या। यहीं से उसने निश्चय किया और दृढ़ निश्चय के साथ कहा कि इसकी शुरुआत आशे की हत्या से की जायेगी जो उस समय तिन्नैवैली का जिलाधिकारी था। इस अंग्रेज अधिकारी ने स्वदेशी आन्दोलन को दबाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। वह उसके निशाने पर था।[50]

यहाँ पर यह बताना अति महत्वपूर्ण होगा कि शैनकोट्टा नामक कस्बा भी उनकी गतिविधियों का एक अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र स्थापित हो चुका था। यहाँ पर वांची अय्यर ने अप्रैल और मई 1911 में लगातार दो सभायें कराई जिसमें उसके साथ अनेक क्रांतिकारी जैसे नीलकंठ, पीचूमनी अय्यर, धर्मराज अय्यर आदि ने भी शानदार भाषण दिये। उन्होंने कुछ कार्यक्रम बनाये जिनमें शाम को रिवाल्वर चलाने की ट्रेनिंग युवकों को दी जाने लगी थी जिसमें उड़ते हुए पक्षियों को निशाना बनाया जाने लगा। पेड़ों पर बैठे हुए पक्षियों को भी निशाने पर लेने लगे। वांची अय्यर प्रशिक्षण के द्वारा एक अच्छा निशानेबाज बन गया था।[51]

वांची अय्यर गुप्त रूप से दृढ़ निश्चय कर लिया था कि आशे को किसी भी रूप में बख्शा नहीं जायेगा; सबसे पहले उसे ही निशाना बनाया जायेगा। उसमें काफी आत्म–विश्वास आ चुका था और अपनी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए अपनी पत्नी को उसके मायके जाने के लिए तैयार किया क्योंकि वह उस समय गर्भवती थी। उसे मायके छोड़ कर अपनी गतिविधियों को अंजाम देना था। उसके पिता रघुपति अय्यर अपने लड़के की गतिविधियों को ठीक नहीं समझ रहे थे। उसकी गतिविधियों को पागल करार दिया।[52] उसका पिता उसकी सरकारी नौकरी छोड़ने के निर्णय को ठीक नहीं समझता था। उसने अपने पिता को समझाते हुए कहा : ''मुझे ऐसी नौकरी नहीं चाहिए और न ही ऐसी चीज, मैं अपनी आजीविका के लिए कहीं ओर चला जाऊँगा। ऐसी जिन्दगी जीना कोई शान नहीं है... बेहतर है मर जाना।''[53] वह मनियाची चला गया और भारत के शहीदों के रूप में अपना दर्ज कराया।

आर0 डबल्यू0 डी0 ई0 आशे, तिनेवली का जिलाधिकारी, कौड़ाई कनाल घूमने के लिए अपनी पत्नी के साथ रेल से यात्रा कर रहा था। जब मनियाची रेलवे स्टेशन पर 17 जून 1911 को वह अपने डिब्बे में बैठा हुआ था तब बोट मेल के लिए वह रेल में बैठे इन्तजार कर रहा था। वांची अय्यर को उसकी यात्रा का पता था और उसके डिब्बे में घुसा और आशे पर निशाना लगाकर गोली चला दी।[54] आशे ने अपने बचाव में अपा हैट उसकी तरफ फेंका और उसका ध्यान बटाने का प्रयास किया लेकिन संभव नहीं हो सका। उसके एक सेवादार ने वांची को पकड़ लिया लेकिन उसे डरा–धमका कर अपने आपको छुड़ा लिया।[55]

वह भागने के लिए बार–2 प्रयास कर रहा था मगर जिधर भी जाये उधर ही भीड़ उसे घेर लेती। जनता में यह भाव नहीं आया कि उसने एक अत्याचारी अंग्रेज अफसर की हत्या की थी जिसने क्रांतिकारियों को काफी परेशान किया था। जान बचाने के लिए वह शौचालय में घुस गया। भीड़ ने शौचालय को घेर लिया लेकिन वांची ने अपने रिवाल्वर से आत्म–हत्या कर ली। उसकी मृत्यु के बाद अन्य दो क्रान्तिकारियों

धर्मराज अय्यर और वेंकटेश्वर अय्यर को भी आशे की हत्या के षड़यंत्र में शामिल होने का दोषी माना गया। अतः उन्होंने भी आत्महत्या कर ली। यह तिनेवली हत्याकांड जनवरी 1912 तक चलता रहा और न्यायालय ने चौदह युवकों को आशे के हत्याकांड में सम्मिलित पाया जिन्हें सख्त सजा दी गई।[56]

दक्षिण भारत का यह कांड काफी महत्वपूर्ण माना गया जिसमें एक जिलाधिकारी को मार दिया गया था। यहाँ वी. वी. एस. अय्यर ही इन योजनाओं का मास्टर–माईंड था। उसने ही अन्य प्रान्तों की तरह दक्षिण भारत में क्रांतिकारी आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया। स्पष्ट रूप से वह बच गया। हालाँकि नीलकंठ ब्रह्मचारी भी एक क्रांतिकारी था जिसने इस षड़यंत्र से अपने आपको अलग कर लिया था। उसे भी अपराधी घोषित किया गया। यह दिलेरी की एक महान घटना थी और यह जाति के बंधनों से मुक्त घटना थी। जाति बंधन दक्षिण भारत में उस समय काफी मजबूत थे। यहाँ पर यह बताना महत्वपूर्ण होगा कि देश के अन्य प्रांतों में ब्राह्मण क्रांतिकारी और उग्रवादी राष्ट्रीयवाद के आन्दोलन को नेतृत्व दे रहे थे।[57]

जातीय भेदभाव और आपसी इर्ष्या ही दक्षिण भारत में क्रांतिकारियों के सामने सबसे बड़ी बाधा थी जो उनको संगठित होने में सबसे बड़ी बाधा बनी हुई थी।[58] दक्षिण भारत में अन्य क्रांतिकारी घटना ऐसे स्तर पर घटित नहीं हुई जैसाकि तिनेवली में हुई। विश्व का कोई भी आन्दोलन हो सभी में जन, मन और धन की आवश्यकता रही है। सर्वप्रथम मानव और धन–शक्ति किसी भी आंदोलन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। सशस्त्र क्रान्ति की सफलता की सम्भावना भी बढ़ जाती है। नीलकंठ अय्यर (ब्रह्मचारी) के नेतृत्व में क्रांतिकारी आन्दोलन के अन्तर्गत देशभक्ति की भावना को बढ़ाने के हरसंभव प्रयास किये गये जिसके अंतर्गत अंग्रेज अधिकारियों को मृत्यु देना आदि प्रयास किए गए। आपसी सहयोग और एकता के द्वारा ही आन्दोलन सफल होते थे।[59]

भारतीय युवा क्रांतिकारी चाहते थे कि अगर उनका आन्दोलन सफल हो गया तो देश की स्थिति में बड़ा परिवर्तन होगा। केवल एक ही ध्येय को सामने रखकर अपने कार्य को आगे बढ़ा रहे थे। विदेशों में भारतीय क्रांतिकारियों से अस्त्र–शस्त्र और साहित्य प्राप्त करना वास्तव में अच्छा प्रयास था। देश में राष्ट्रीयता की भावना जगाना उनका उद्देश्य था। उसी के द्वारा उनका एक सशस्त्र क्रांति का स्वप्न था। कालांतर में अस्त्र–शस्त्र की सहायता प्राप्त करना काफी कठिन हो गया था। हालाँकि क्रांतिकारियों ने उधार पर भी धन प्राप्त किया जिसका इस्तेमाल इश्तहार और क्रांतिकारी साहित्य के प्रकाशन एवं अस्त्र–शस्त्र के प्राप्त करने में लगाया।[60]

वास्तव में यह महान कार्य था। नीलकंठ अय्यर के अनेक सपने थे लेकिन सरकारी यंत्र ने ऐसी लगाम लगाई कि वह न तो साहित्य का प्रकाशन करवा सका और न ही उधार लिया गया धन वापिस कर सका। इससे लोगों की नजरों में वह बराबर गिरता गया। ज्यादातर क्रांतिकारी जो उसका साथ दे रहे थे वे गरीब घरों से संबंध रखते थे। आर्थिक संकट उनके लिए सबसे बड़ी समस्या थी जिसे सहन करना अत्यंत कठिन था। आर्थिक तन्त्र की वजह से काफी लोगों को क्रान्तिकारी गतिविधियों से नहीं जोड़

सके। केवल जनता का अल्पसंख्यक वर्ग क्रांति को कैसे लंबे समय तक चला सकता था। यही वजह थी कि यह आन्दोलन दक्षिण भारत में अत्यंत कमजोर रहा जबकि देश के अन्य क्षेत्रों में यह मजबूत था।[61]

इन्हीं कारणों की वजह से आचार्य को यह आभास हो गया था कि क्रांतिकारी गतिविधियाँ भविष्य में नहीं चल पायेगी। उन्होंने सोचा कि बाह्य देशों में जाकर ही भविष्य की योजनाओं को फलीभूत किया जा सकता था। इसलिए अनेक भारतीय क्रांतिकारियों ने देश छोड़ने का निर्णय लिया ताकि विश्व–जनमत का सहयोग प्राप्त कर विदेशी सत्ता को समाप्त किया जा सके।[62]

आचार्य ने अपने बीमार पिता को मरणासन्न छोड़कर देशभक्ति की भावना को दिल में बिठाकर देश छोड़ने का निर्णय लिया। यह उसके लिए चुनौती थी। इस प्रकार कुछ कपड़े एक बक्से में रख कर विदेश की राह पकड़ी। केवल तीन सौ रुपये उसके पास थे जो अपर्याप्त थे क्योंकि किराया, खाना–पीना आदि के लिए कम से कम दो हजार और रुपयों की जरूरत थी जिससे की वह लन्दन पहुँच सके।[63] अपने साथ किसी अन्य सामान को साथ नहीं रखा और न ही उसके पास खरीदने के लिए पैसे थे। ऐसी असमंजस्य की स्थिति में वह निर्णय नहीं ले पा रहा था कि एशिया में या यूरोप में कहाँ पर अपनी देश–भावना को प्रदर्शित करे। मद्रास बन्दरगाह से श्रीलंका की राजधानी कोलम्बो का टिकट खरीदा। इस शहर में वह चिदम्बरम पिल्ले के साथ पहले कई बार आ चुका था। पिल्ले की स्वदेशी स्टीम नैविगशन कम्पनी अक्सर इस शहर तक आती–जाती रहती थी। इस कम्पनी के जहाजों में उसने कोलम्बों तक की कई बार यात्रायें की थी।[64]

यहाँ पर चिदम्बरम पिल्ले द्वारा स्थापित नैविगेशन कम्पनी के बारे बताना उचित होगा कि इस कम्पनी की स्थापना के मुख्य ध्येय क्या–क्या थे? एक भारतीय ने क्यों इस विषय में इतनी दिलचस्पी दिखाई। पिल्लै ने तुतिकोरिन से श्रीलंका के बीच व्यापार का परमिट लिया हुआ था। जिससे कम्पनी ने अल्प समय में काफी धन अर्जित किया था। जब अंग्रेजों को कम्पनी की क्रांतिकारी गतिविधियों की जानकारी हुई तो लगाम लगाने का निश्चय किया गया। पिल्ले अपनी कम्पनी के माध्यम से धन कमाना चाहता था जिसका प्रयोग राष्ट्रीय गतिविधियों में कर सके। वह स्वदेशी माल को विदेशों में बेचकर भारतीय उद्यमियों, उत्पादकों के हितों की रक्षा करना चाहता था। उनके पास नगदी रहे और उत्पादन को बढ़ाया जाता रहे। वह अन्य भारतीय व्यापारियों को भी लाभान्वित करना चाहता था।[65] कई भारतीय व्यापारियों ने उसके इस अभियान में सहायता करने का आश्वासन भी दिया था। इस अभियान को लम्बे समय तक नहीं लचाया जा सकता था क्योंकि यह काफी चुनौती भरा कार्य था। ऐसे व्यापारियों का मानना था कि पिल्लै ने काफी पैसा भी कमाया लेकिन तिनैवली के कलैक्टर आशे ने उसकी कम्पनी की व्यापारिक गतिविधियों को ठप करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। परमिट देने से मना कर दिया। यही वजह थी कि वह क्रांतिकारियों का निशाना बना जिसकी वजह से उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।[66]

पिल्लै ने कोलम्बो बन्दरगाह पर उतर कर यूरोप जाने वाले जहाज के बारे में जानकारी प्राप्त की। ग्यारह पौंड (165 रुपये) देकर उसने ग्रासैल्स (फ्रांस) नगर के लिए टिकट लिया। उसे बताया गया कि

यात्रा 20–22 दिनों की होगी। उसके लिए काफी कठिन थी क्योंकि पैसा कम होने के कारण बामुश्किल काम चलाना जग रहा था। जहाज में मिलने वाला खाना भी उसे पसन्द नहीं था जिसमें मीट–अण्डे आदि थे। ब्राह्मण जाति से होने के कारण उसे सूखी ब्रेड और कॉफी से ही अपना पेट भरना पड़ा। ब्राह्मण होने के कारण ऐसी स्थिति में व्रत रखने का निर्णय लिया। ताकि मन, चित्त शुद्ध रह सके। मन–मुताबिक खाना न मिलने के कारण शारीरिक तौर पर दुर्बल हो गया था।[67]

जैसे–तैसे करके आचार्य ब्रासैल्स पहुँच गया। जहाँ पर उसको पेरिस जाने के लिए कहा गया जहाँ वह प्रोफेसर मानियर विन्सन और अन्य दो भारतीयों को मिल सके क्योंकि वे उसकी जानकारी में थे। वह प्रो॰ विन्सन से मिला तो उसने आचार्य को अगले दिन आने के लिए कहा। प्रो॰ विन्सन ने दोनों भारतीयों का पता उसे बता दिया लेकिन आचार्य के पास उन तक जाने के लिए किराये के पैसे नहीं थे। प्रो॰ विन्सन ने अपनी जेब से उसे रेल का किराया दिया और अन्य जानकारीयाँ भी दी। जिन भारतीयों से वह मिला तो उन्होंने उसमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। आचार्य को कहा गया कि वह लन्दन में जाकर वी0 वी0 एस0 अय्यर से मिलें।[68] अय्यर को तार से जानकारी दी गई और आचार्य को तुरंत लंदन आने के लिए आमंत्रित किया। आचार्य पेरिस से चलकर लन्दन पहुँच गया जहाँ पर अय्यर ने उसे गले लगाकर उसका स्वागत किया। आचार्य को उसकी इच्छानुसार कार्य भी दिया और उसके रहने की समस्या भी समाप्त हो गई।[69] लन्दन में रह रहे भारतीयों को ऐसे व्यक्ति की तलाश रहती थी जो देश के लिए कुछ योगदान कर सके। आचार्य के जीवन का यह नया अध्याय था जो लन्दन से शुरु हुआ। भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा स्थापित इण्डिया हाउस का सक्रिय सदस्य बना और लन्दन में अन्य भारतीय क्रांतिकारियों के साथ कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसने स्वयं अपने संस्मरण में इस का जिक्र किया कि क्रांतिकारी गतिविधियों से जब उसका संबंध स्थापित हुआ तो उसके जीवन में इससे एक नये अध्याय की शुरुआत हुई और आगे चलकर एक सशक्त भारतीय क्रांतिकारी के रूप में उसकी पहचान बनी।[70] यह वास्तव में उसके जीवन की महान घटना थी और देश–सेवा करने का उसे एक अच्छा अवसर भी प्राप्त हुआ।

संदर्भ :

1. दत्तागुप्ता, सोभनलाल, *कामिन्ट्रन, इंडिया एण्ड दा कालोनियल कुएश्चन 1920–37* (के. पी. बागची एण्ड कंपनी, कलकत्ता) पृ. 6–7
2. *उपर्युक्त*, पृ. 14–15
3. *उपर्युक्त।*
4. *होम डिपार्टमैंट पालिटिकल बी, अप्रैल* 1911, सं. 101–104

5. भारत सरकार की अनेक गुप्त रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि किस तरह से गुप्तचर विभाग ने समस्त क्रांतिकारी गतिविधियों की जानकारियों का जिक्र अपने गुप्त दस्तावेजों में विस्तार के साथ किया है।
6. आचार्य, एम.पी.टी., *रैमन्सिसिज ऑफ एन इंडियन रिव्योलूसनरी,* दिल्ली, 1992, पृ. 3
7. *उपर्युक्त।*
8. *उपर्युक्त।*
9. *दी इण्डियन रिव्यू* (मद्रास) मई 1974, पृ. 28.
10. *होम (डिपार्टमेंट) पालिटिकल बी.* दिसम्बर 1909, सं. 37
11. *उपर्युक्त।*
12. आचार्य, *वही,* पृ. 3
13. *उपर्युक्त*।
14. उपर्युक्त।
15. *उपर्युक्त।*
16. *दा इंडियन रिव्यू,* पृ. 3
17. *उपर्युक्त।*
18. कर, जेम्स कैम्पबैल, *पालिटिकल ट्रबल इन इंडिया* (दिल्ली, 1973) पृ. 200
19. *उपर्युक्त।*
20. आचार्य, *वही,* पृ. 3–4
21. *उपर्युक्त।*
22. *उपर्युक्त।*
23. *दा मराठा* (पूना) 30 जुलाई, 1937
24. सेठना, खोर्शिद आदी, *मैडम भिखाईजी रूस्तम कामा,* (दिल्ली, 1987) पृ. 70
25. *उपर्युक्त।*
26. वर्मा, डॉ0 गणेषीलाल, *श्यामजी कृष्ण वर्मा, दा अननोन पैट्रियाट* (दिल्ली, 1993) पृ. 23–24
27. आचार्य, *वही,* पृ. 4
28. *उपर्युक्त।*
29. *उपर्युक्त।*
30. सेठना, *वही,* पृ. 101–102
31. *जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री* (त्रिवेन्द्रम), पृ. 513
32. *दी सैडिसन कमेटी रिपोर्ट,* 1919, पृ. 162
33. *उपर्युक्त।*

34. आचार्य, *वही*, पृ. 5

35. उपर्युक्त।

36. *जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री*, पृ. 517

37. उपर्युक्त।

38. *उपर्युक्त*, पृ. 518

39. उपर्युक्त।

40. भारत सरकार, *आशे मर्डर केस*, स0 पृ. प्टए 826

41. उपर्युक्त।

42. *उपर्युक्त*, खण्ड सं0 प्प्ए पृ. 1171

43. *दा मराठा*, 30 जुलाई 1937

44. उपर्युक्त।

45. भारत सरकार, *आशे मर्डर केस*, स0 पृ. प्टए 1486

46. आचार्य, *वही*, पृ. 4–5

47. सेन. एस0 पी0 (सम्पा0) *डिक्शनरी ऑफ नेशनल बायोग्राफी*, खण्ड–2, पृ. 219–20

48. उपर्युक्त।

49. सेठना, *वही*, पृ. 156

50. *जरनल ऑफ केरला स्टैडिज*, पृ. 525–26

51. इन्दिरा देवी, एम0 जी0, *टैरेरिस्ट मूवमैंट इन साउथ इण्डिया*, पृ. 41–47

52. उपर्युक्त।

53. पद्मानाभम, *आर॰ ए॰, वी॰ चिदम्बरम पिल्लै* (दिल्ली, 1977), पृ. 82

54. दा मराठा, 10 जुलाई, 1911

55. नायर, वी, शंकरण, *वही*, पृ. 526

56. *उपर्युक्त*, पृ. 527

57. *उपर्युक्त*, पृ. 527–28

58. भारत सरकार, *आशे मर्डर केस, खण्ड* सं0 3, पृ. 1169

59. *जनरल ऑफ केरला स्टडीज*, पृ. 527

60. उपर्युक्त।

61. उपर्युक्त।

62. उपर्युक्त।

63. आचार्य, *वही*, पृ. 68

64. *उपर्युक्त*, पृ. 69

65. *मराठा*, जुलाई 30, 1937
66. *बन्दे मातरम* (पेरिस) 12 अगस्त, 1911
67. *मराठा*, जुलाई 30, 1937
68. *उपर्युक्त।*
69. *दी इण्डियन रिव्यू* (मद्रास) मई 1973, पृ. 29
70. आचार्य, *वही*, पृ. 58—59